सप्तम युक्त प्रान्तीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

स्वागताध्यक्ष

आचार्य रामदेव जी

का

भाषण

मन्त्री स्वागतसमिति

श्री लाला नन्दलाल के प्रबन्ध से
गुरुकुल-यन्त्रालय काँगड़ी में मुद्रित।

॥ ओ३म् ॥

उपस्थित प्रतिनिधि भाइयो !

आज इस तपोमय भूमि में हम आप का किस भाँति स्वागत करें। समझ नहीं आता कि सुख दुःख की मिली घड़ी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की खुशियाँ मनाई जाय या उस पूज्य श्रद्धेय साहित्यसेवी दिवंगत महान् पुरुष की अमर आत्मा के प्रति योग्य कर्तव्य की याद दिलाई जाय। जिस महान् आत्मा के कर कमलों से यह वाटिका लगाई गई थी, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन इस के लिये दे दिया था, जिसके प्रभाव से ही यह वाटिका अब तक इतनी फूली फली है आज वह हमारे से छीन लिया गया है। जिस महान् पुरुष की दिव्य देह से सदा यह मञ्च विभूषित हुआ करता था आज वह हमारे बीच नज़र नहीं आता। हम तो उस की प्रतीक्षा में थे कि वह दिन (गुरुकुल जयन्ती दिवस) आयगा जब हमारे पूज्य कुलपति की लगाई हुई वाटिका की सफलता को देख कर आर्य जाति अपनी श्रद्धा की भेंट उस महान् व्यक्ति के चरणों में रखेगी और उस से दिव्य सन्देश लेकर जायगी। परन्तु कौन जानता था 'मोरा मन कछु और और है विधिना के कछु और'। कुल भूमि का ज़र्रा २ उस की पुण्य स्मृति की यादगार है। दिल नहीं चाहता कि अब भी उन के देहावसान पर विश्वास करूँ परन्तु क्या किया जाय यहाँ तो साक्षियाँ इतनी ज़बरदस्त है कि विश्वास करना ही पड़ता है। इस से अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या होगी कि यह 'कुल' अपने हर्षोत्सव के समय भी अपने पूज्य पिता को अपने बीच नहीं रख सका।

अभी उस महान् पुरुष के वियोग के दुःख से विह्वल हुए हम किं-कर्तव्य विमूढ़ थे कि सहसा निष्ठुर विधाता ने एक और कठोर वज्र पात किया। दानवीर निस्पृह श्री मुन्शी अमनसिंह जी के देहा-

वसान का दुःखदायी समाचार मिला। आपने अपनी सकल सम्पत्ति गुरुकुल तथा आर्यसमाज के लिये न्यौछावर कर दी थी। आप की प्रदान की गई ही पुण्य भूमि पर हम सब एकत्र हुए हैं। इन से पूर्व हुई २ सेठ रघुमल जी की मृत्यु की याद करके सहसा यही स्मरण हो आता है 'छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति'। इन प्रतिकूल अवस्थाओं के होते हुए भी सब से पूर्व मैं दूर २ स्थानों से आये हुए आर्यसज्जनों का हार्दिक स्वागत करता हूं जिन्होंने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर इस सम्मेलन की शोभा को बढ़ाया है और सम्मेलन के अधिकारी वर्ग विशेषतः धन्यवाद के पात्र हैं जिन्हों ने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार कर पच्चीसी के शुभावसर पर हमें अपनी प्रिय मातृभाषा आर्यभाषा के लिये श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने का उत्तम अवसर प्रदान किया है।

सभ्यगण! आज जिस पुनीत स्थान पर हम सब एकत्र हुए हैं, उस का भारतवर्ष के इतिहास में तथा आर्यसभ्यता की विकसति में एक उच्च एवं महत्व-पूर्ण स्थान है। यह पञ्चपुरी मातृभूमि की प्राचीन स्मृतियों में से एक वैभवयुक्त प्रतिष्ठाप्राप्त पुण्यभूमि हैं। भारतवर्षीय आर्य संस्कृति के साथ इस का अमिट तथा अभिन्न सम्बन्ध है। भारतीय सभ्यता का इतिहास इस पुरी के विना अपूर्ण ही है। यह वही पुण्यभूमि है जहां पर ऋषिमुनिगण गङ्गा के तट पर अविक्षुब्ध समाधि में लीन हुए २ सच्चिदानन्द स्वरूप पर-ब्रह्म का साक्षात्कार किया करते थे। यह वही पुण्यभूमि है जिसके चरणों में निरन्तर बहती हुई भागीरथी के शीतल जल ने सहस्रों सन्तप्त आत्माओं को शान्त किया है। राजा भर्तृहरि भी संसार के विक्षुब्ध वातावरण से परे इसी शान्ति के साम्राज्य में, संसार से विरक्त हुए २ सच्चे आनन्द का अनुभव करते हैं—

गङ्गातीरे हिमगिरि शिला बद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसन विधिना योगनिद्रांगतस्य।

किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैः यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वाङ्गमंगे मदीये ॥ (वैराग्य शतकम्)

यह वही पुण्य भूमि है जहाँ अज्ञात समय से आर्यजाति ने नाना प्रकार के कष्ट सहन करके अपनी तीर्थ यात्रा को सफल समझा और अन्य धर्मों की बढ़ती हुई अभिवृद्धि ने हिन्दूधर्म की शरण ली है। इस महत्व पूर्ण स्थान का प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यून्तसाँग ने भी भली भाँति वर्णन किया है। कविकुल शिरोमणि कालिदास भी कनखल का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान पंक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दु लग्नोर्मिहस्ता ॥

इन्ही वन लताओं, कुञ्जों तथा सघन बनों की सुरम्य शोभा ने कवि कालिदास की प्रसुप्त अनुपम काव्य प्रतिभा को जागृत कर आर्यवर्त का नाम उज्वल रखा है। कुमार सम्भव के निम्न श्लोक भी इसी पुण्य भूमि का वर्णन करते हुए प्रतीत होते हैं—

भागीरथी निर्झरसीकराणाँ वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्न शिखण्डिबर्हः ॥
स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मागंगाप्रवाहोक्षित देव दारुः ।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धं किञ्चित्क्वणत्किन्नरमध्युवास ॥
मृगाः प्रियाकाद्रुममञ्जरीणां रजः कणैर्विघ्नितदृष्टिपाताः ।
मदोद्धता प्रत्यनिलं विचेरुर्वनस्थली मर्मरपत्रमोक्षाः ॥
बालेन्दुवक्राण्यविकाशभावाद्बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतीनीव वनस्थलीनाम् ॥

इसी भूमि की पुण्य रज में कवि कालिदास ने अपना शैशव बिताया है। इन हिमाच्छादित पर्वत शिखरों तथा भागीरथी के

शीतल प्रवाह के अपूर्व संयोग को देखकर सहसा वेद भगवान की ऋचा का स्मरण हो आता है—

> यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
> यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जहां निरन्तर कलकल करती हुई जान्हवी के अविरल राग में प्रातः कालीन शीतल मन्द सुगन्ध समीर के झोकों से डोलती हुई पुष्पित शाखाओं पर चहचहाते हुए पक्षीगण ताल देते हुए परिश्रान्त पथिक के हृदय में नवजीवन का संचार कर रहे हैं; हिमाच्छादित पर्वतश्रेणियां गौरव के साथ सिर ऊँचा किये हुए बालरवि की सुनहरी किरणों से मन्द २ मुस्क्यान कर रही हैं और सघन वन निस्तब्ध नीरव के साम्राज्य में जङ्गली जानवरों की आकस्मिक चीत्कारों व दहाड़ों से गूंज उठते हैं; उसी पुण्य भूमि के किनारे, हिमाचल की आंचल में, आरण्यक पशुओं की समरस्थली में आज से २५ वर्ष पूर्व श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने इस कुल की स्थापना की थी । उसी तपोमय भूमि में आज आप का हम सहर्ष स्वागत करते हैं ।

इस कुल को इस बात का अभिमान तथा गौरव प्राप्त है कि यही प्रथम संस्था है जिस ने आर्यभाषा को ही राष्ट्रभाषा बनाने में अग्रेसर कदम लिया है और आर्यभाषा को ही शिक्षा का माध्यम रख कर संसार के सन्मुख यह ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया है कि प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त उच्च शिक्षा भी आर्यभाषा माध्यम द्वारा दी जा सकती है। इस से पूर्व विदेशियों के विचारों में रंगे हुए हम में से कोई कल्पना भी न कर सकता था कि आर्यभाषा भी उच्च शिक्षा का माध्यम बन सकती है और मानसिक विकास के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है । सन् १८३५ ईसवी की शिक्षा समिति (Public Instruction Committee) के अध्यक्ष

श्रीयुत लार्ड मैकाले आंग्लभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम करने के पक्ष में भाषण करते हुए कहते हैं—We have to educate a people who can not at present by educated by means of their mother tongue. We must teach them some foreign language. इसी सम्बन्ध में वह आगे चल कर कहते हैं जिस प्रकार १५ वीं और १६ वीं सदी में इङ्गलैण्ड में आंग्लभाषा को छोड़ कर लेटिन तथा ग्रीक भाषा का प्रचार आवश्यक था, रूस में आंग्लभाषा का होना जरूरी था, उसी प्रकार इस समय भारतवर्ष में हमारी भाषा (आंग्ल भाषा) का होना आवश्यक है ।

यदि बिना किसी तरह की परीक्षा के इस कथन को स्वीकार कर लिया जाय— यद्यपि चीन तथा जापान का इतिहास इस के विरुद्ध साक्षी दे रहा है। इन देशों में विदेशी भाषा का माध्यम न होते हुए भी शिक्षा सम्बन्धी किसी तरह की न्यूनता नहीं—तथापि यह हमारा कर्तव्य तथा अधिकार है कि इङ्गलैण्ड तथा रूस की भांति इस समय भारतवर्ष में आर्यभाषा को राष्ट्र भाषा स्वीकार करें और उसी में उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न करें । सन् १८३७ ईसवी में जब यह प्रश्न उठा कि कुछ विद्वानों को प्रान्तीय भाषाओं में उच्च साहित्य पैदा करने के लिये नियुक्त किया जाय उस समय श्रीयुत लार्ड मैकाले ने भी स्वीकार किया कि प्रान्तीय भाषाओं में उच्च साहित्य पैदा करना चाहिए। परन्तु उन्हों ने सरल और सीधे मार्ग को छोड़ कर टेढ़े और लम्बे रास्ते को पसन्द किया। वह लिखते हैं—We are now following the slow but sure course on which above we can depend for a supply of good books in the vernacular languages of India. We are attempting to raise up a large class of enlightened natives. I hope that twenty years hence, there will be hundreds, nay, thousands of natives familiar with the best models

of composition and well acquainted with western science. Among them some persons will be found who will have the inclination and the ability to exhibit Eurpean knowledge in the vernacular dialects. यदि प्रारम्भ में ही प्रान्तीय भाषाओं में अनुवादित पुस्तकें भारतीय शिक्षणालयों में स्थान प्राप्त कर लेतीं तो आज हमें इस से अधिक संख्या में शिक्षित बालक दृष्टि गोचर होते और उनका मानसिक विकास भी किसी सीमा तक इस मात्रा से अधिक उपलब्ध हो सकता। जापान ने इसी सरल और सीधे मार्ग का अनुसरण किया। जापान के राजनीतिज्ञ तथा शिक्षा विशारद इस बात को भली भांति समझते थे कि विदेशी भाषा के साथ मानसिक तथा राजनीतिक दोनों प्रकार की पराधीनता का नित्य सम्बन्ध है। परिणामतः उस जाति के बालक अधिक शिक्षित तथा उन्नत हैं। संसार के वैज्ञानिक आविष्कारकों में जापान के विद्वान् अनुपाततः पर्याप्त मात्रा में हैं। इस बात के लिये भारत माता को भी प्रतिष्ठा प्राप्त है कि जगदीश चन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर प्रभृति विश्व-प्रतिष्ठित विद्वानों को इस ने जन्म दिया है। परन्तु यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि यदि मातृ भाषा आर्यभाषा में उच्च शिक्षा दी जाती और भारतीयों को शिक्षा के लिये उत्तम अवसर प्रदान किया जाता तो भारतवर्ष भी अन्य सभ्य देशों से किसी अवस्था में हीन दिखाई न देता। वस्तुतः विदेशी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने का वह कारण न था जो उपर्युक्त शब्दों में प्रतीत होता है। आर्यजाति की भलाई को दृष्टि में रख कर स्नेहार्द्र विदेशी शासकों ने आंगल भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं रखा; प्रत्युत लार्ड मैकाले स्वयं अपना तात्पर्य स्पष्ट कर देते हैं जब वह कहते हैं—The languages of western Europe have civilised Russia. I can not doubt that what they can do for

the Hindoo what they have done for the Tartar. पश्चिमीय सभ्यता के प्रचार की उत्कट अभिलाषा ने ही विदेशी शासकों को हमारी भलाई के लिये आंग्लभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिये प्रेरित किया है। अपनी इच्छा को पूर्ण होते देख कर लार्ड मैकाले बड़े प्रसन्न होते हैं और १८३८ ई० में अपने पिता के पास पत्र लिखते हैं, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है— Our English schools are flourishing wonderfully..............The effect of this education is prodigious. No Hindoo, who has received English education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but others profess themselves pure Deistic and some embrace Christianity. अपने कथन को यदि और अधिक पुष्ट करने के लिये मैं आप के सन्मुख उक्त महोदय का एक और उदाहरण प्रस्तुत कर दूँ तो आप को मेरे कथन में किसी प्रकार का सन्देह न रहेगा। वह लिखते हैं— We desire to form a class who may be interpreters between us and the millions we govern, a class of persons, Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals and in intellect."

वस्तुतः प्रत्येक भाषा का किसी विशेष सभ्यता, देवमाला (Mythology) वा इतिवृत्त से सम्बन्ध होता है। युरोपीय भाषाओं का सम्बन्ध राम कृष्ण से नहीं, प्रत्युत क्राइस्ट व सेन्ट पीटर से है। उस में भीम वा अर्जुन का नाम नहीं अपितु नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिंसबिस्मार्क और नैल्सन प्रभृति शूरों का नाम यत्रतत्र उपलब्ध होता है। इसी प्रकार फ़ारसी साहित्य में कहीं भी आपको राम, कृष्ण या भीम और अर्जुन का नाम दृष्टिगोचर न होगा, वहां हज़रत मुहम्मद, अली, उमर, हसन और रुस्तम प्रभृति के नाम ही

दिखाई देंगे । अतः यदि हम अपने पूर्वजों का नाम अमर रखना चाहते हैं, यदि हमें अपनी सभ्यता या इतिवृत्त को चिरस्थायी रखने की अभिलाषा है, अगर हमें राम, कृष्ण या भीम और अर्जुन से प्रेम है तो हमें संस्कृत तथा हिन्दी को अपनाना होगा । यही कारण है कि जब से हम ने विदेशी भाषाओं को अपनी मातृभाषा से अधिक महत्ता दी है तब से अपने साहित्य से उपेक्षा करली है। जब से कवि कालिदास, भवभूति, सूरदास और तुलसीदास आदि उत्तम २ कवियों के काव्यों को भुला दिया और मिल्टन, शैक्सपीयर, वर्ड्स वर्थ, शैले प्रभृति आंग्लभाषा के कवियों के नाटकों तथा काव्यों में रुचि की है तभी से हमारे समाज में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति का भाव घटता जा रहा है । शोक से यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि जहां पहले आबालवृद्ध को राम और कृष्ण के जीवन कण्ठस्थ होते थे, घर २ में रामायण तथा महाभारत का नित्य प्रति पाठ होता था, उन्हीं ऋषि मुनियों की सन्ततियां उन का नाम तक नहीं जानती। इस के स्वीकार करने में हमें किसी प्रकार का सन्देह न करना चाहिए कि जब से विदेशी भाषा का इस पुण्य भूमि में प्रवेश हुआ है उस समय से हमारे भारतीय भाइयों ने अपनी प्राचीन गौरव पूर्ण सभ्यता से अरुचि दर्शाई है । यदि आंग्लभाषा के प्रवेश में लार्ड मैकाले का बड़ा हिस्सा है, तो फ़ारसी को भारतवर्ष में राजकीय भाषा करवाने में हमारे आर्य भाई भी कम दोषी नहीं हैं । यदि टोडरमल फ़ारसी को राजकीय भाषा करवा कर हिन्दी साहित्य में बाधा न डालता तो हिन्दू कवियों के अतिरिक्त न जाने रहीम, मुहम्मद जायसी, रसखान उसमान, मुबारिक आदि कितने ही मुसलमान कवि आर्यभाषा साहित्य की वृद्धि में सहायक एवं आर्यसभ्यता के संरक्षक दृष्टि गोचर होते। मुसलमान कवि रसखान भी तात्कालिक हिन्दूसभ्यता के प्रभाव से न बच सका और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों में अपना नाम गिनाया।

उसकी निम्न कविता किस सुन्दरता से उन के मनोगत भावों को प्रकट कर रही है—

'मानस हौं तो वही रस खानि बसौं व्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
'जो पशु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
'पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर पुरन्दर धारन।
'जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदम्ब की डारन॥
'या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ तिन को तजि डारौं।
'आठहुँ सिद्धि नवौनिधि को सुखनन्द की गाय चराई बिसारौं॥
'रसखानि कबौं इन आंखन सौं व्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं॥
'कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं॥

इसी प्रकार रहीम कवि का दोहा है—

"जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हो चतुर चकोर।
निशिवासर लागो रहे, कृष्णचन्द्र की ओर॥

इसी भांति अन्य मुसलमान कवियों की कविताएं भी इस प्रकरण में उद्धृत की जा सकती हैं। परन्तु आज कल तो मुसलमान भाई क्या, हिन्दु लोग भी इस ओर से उपेक्षा किये हुए हैं। उन्हें अपनी भाषा नीरस तथा अप्रीतिकर प्रतीत होती है और विदेशी भाषाओं में विशेष माधुर्य, आल्हाद तथा प्रसाद अनुभव होता है। इसी प्रकार दिन प्रतिदिन विदेशी भाषाओं के कारण प्राचीन सभ्यता का लोप होते देख कर महर्षि दयानन्द सरस्वती के आदेशानुसार प्राचीन सभ्यता की जागृति के लिए, मातृभाषा संस्कृत तथा आर्यभाषा के पुनरुद्धार के लिये इस 'कुल' की स्थापना हुई। मातृभूमि के धार्मिक सुधार के अतिरिक्त आर्यभाषा के प्रचार में भी श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ही अग्रगण्य हैं। गुजरात प्रान्त के होते हुए भी उन्होंने प्रान्तीयता के मोहवश गुजराती को नहीं अपनाया, प्रत्युत पुण्यभूमि आर्यावर्त को संगठित करने तथा प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के लिये आर्यभाषा को ही स्वीकार किया। स्वामी जी ने अपनी सर्वोच्च पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' किसी

अन्य भाषा में न लिख कर आर्यभाषा में ही लिखी। आप की सब पुस्तकें आर्यभाषा या संस्कृत में ही पाई जाती हैं। इसी प्रकार आर्यसमाज के उपनियमों में भी आर्यभाषा के अध्ययन को आवश्यक बनाया। उन्हीं पूज्य श्रद्धेय आचार्य स्वामी दयानन्द जी के आदेशानुसार पंजाब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से संस्थापित हुई २ भी इस संस्था ने पञ्जाबी व आंग्लभाषा आदि अन्य किसी भाषा को उच्च स्थान नहीं दिया। मद्रास, बंगाल, महाराष्ट्र तथा गुजरात आदि प्रान्तों के बालक यहां आर्यभाषा में शिक्षा पाते हैं। क्योंकि इस के संस्थापक को अपने आचार्य के वचनों पर पूर्ण विश्वास था कि आर्यभाषा ही राष्ट्र भाषा हो सकती है, इसी भाषा के द्वारा ही आर्यजाति को भारतीयता के सूत्र में ग्रथित किया जा सकता है, इसी के आधार पर समाज संगठन का विशाल भव्य प्रासाद दृढ़ तथा चिरस्थायी बनाया जा सकता है। उसी महापुरुष के विचारों का क्रियात्मक रूप यह गुरुकुल है। यही संस्था है कि जिस ने भारतवर्ष में सब से प्रथम आर्यभाषा को फिर से राष्ट्र भाषा बनाने के लिये क्रियात्मक कार्य किया है। जिस समय शिक्षित समाज पर लार्ड मैकाले के कथन का पूरा असर पड़ चुका था, प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि हिन्दी उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकती, उस समय गुरुकुल के संचालकों ने अपने आचार्य के वचनों पर पूर्ण विश्वास रखते हुए इस संस्था में आर्यभाषा को ही मुख्य भाषा स्वीकार किया तथा आर्यभाषा में ही उच्च शिक्षा देने का प्रबन्ध किया। इस समय यह अच्छी तरह सिद्ध हो चुका है कि आर्यभाषा भी उच्च शिक्षा का माध्यम हो सकती है और भारतवर्ष के विद्यालयों में अधिक उपयोगी है। माननीय श्री निवास शास्त्री जी ने, जिन को पूर्ण विश्वास था कि आर्यभाषा अथवा अन्य कोई देशी भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती, जब १९१४ ई० में गुरुकुल में पधारे और यहां का भलीभांति निरीक्षण किया तो बड़े कौतूहल के साथ, पूर्व विचारों के विरोध में होते हुए भी स्वीकार किया—

"आज तक मुझे यह बात कभी सम्भव मालूम नहीं हुई थी कि अन्त तक किस प्रकार देशभाषा में शिक्षा दी जा सकती है ? मेरा विचार था कि मध्य विभाग में शिक्षा का माध्यम देश भाषा हो सक्ती है, किन्तु कालिज में इङ्गलिश ही शिक्षा का माध्यम बन सकती है। मैंने यह कहा है कि मेरा ऐसा विचार था किन्तु अब मैं इस से ऊपर उठ रहा हूँ।"

इसी प्रकार डा० एन. ई. सेडलर जो कुछ दिन के लिये यहां वास कर चुके हैं, गुरुकुल के विषय में सम्मति देते हुए लिखते हैं—Nor less do I share your belief that every student boy or girl should be trained skilfully in the study or use of another tongue. इन के अतिरिक्त प्रो० राधा कमल मुकर्जी, प्रो० विनय कुमार सरकार, डा० नाग, डा० प्रभुदत्त जी शास्त्री तथा डा० महेन्द्र लाल प्रभृति भारतीय विद्वान् जो इस गुरुकुल की स्नातक परीक्षा के परीक्षक हैं, जिन के बनाये प्रश्नपत्रों का उत्तर यहां के विद्यार्थी आर्यभाषा में ही देते हैं, उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया है।

इसी प्रकार जो अन्य बड़े २ विद्वान् तथा नेतागण इस भूमि में पधारे हैं उन पर यहां की संस्कृति और आर्यभाषा में छिपे हुए गुह्य रत्नों तथा गुह्य शक्तियों का चामत्कारिक प्रभाव पड़ा। इस लिये इस कुल को इस बात के लिये अभिमान है कि आर्यभाषा के प्रति की गई सेवाओं में इस संस्था की सेवायें सब से पुरातन तथा महत्व पूर्ण हैं। इस संस्था द्वारा मातृभाषा आर्यभाषा के लिये भारतीय तथा विदेशीय दर्शकों के हृदयों में आदर का भाव उत्पन्न हुआ है और यह अच्छी तरह से सिद्ध हो चुका है कि आर्यभाषा के उच्च शिक्षा का माध्यम होने से ज्ञान में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आ सकती। अतः प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी सज्जन का इस संस्था से विशेष सम्बन्ध हो जाता है। हमें इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि

ऐसे प्रसन्नता के अवसर आप लोगों ने हमारा निमन्त्रण स्वीकार किया है। इस शुभावसर पर प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी सज्जन के हृदय में अपनी प्रिय संस्था के लिये, जब कि वह अपनी पच्चीसी की खुशियां मना रही है, प्रेम पूर्ण उल्लास होगा और इस संस्था को अपनी ही संस्था समझ कर इस महोत्सव में खुले हृदय से सम्मिलित होगा।

सभ्यगण ! यदि इस अवसर पर आप को इस संस्था की ओर से आर्यभाषा के प्रति की गई सेवाओं का परिचय करादूँ तो सम्भवतः अनुचित न होगा। इस संस्था का कार्य आर्यभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बना कर ही समाप्त नहीं हो जाता; प्रत्युत अन्य भी कुछ ऐसे कार्य हैं, जिन से आर्य भाषा प्रचार में बड़ी सहायता मिली है। आर्यभाषा के प्रचार के लिये अन्य साधनों के अतिरिक्त आर्यभाषा-पत्र पत्रिकाओं द्वारा भी मातृभूमि की सेवा करना प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी सज्जन का कर्तव्य है। इस कर्तव्य को भी इस संस्था ने अपनी तरफ़ से अच्छी तरह से निभाया है। पञ्जाब प्रान्त में जो सब से पूर्व हिन्दी पत्र प्रकाशित हुआ है वह 'सद्धर्म प्रचारक' है जो इस संस्था के संस्थापक की ओर से प्रकाशित होता रहा है। इस के पश्चात् साप्ताहिक पत्र 'श्रद्धा' का जन्म हुआ, जिस ने धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया है। आज कल भी यहां से एक उच्च कोटि का मासिक पत्र 'अलंकार तथा गुरुकुल समाचार' गुरुकुल के स्नातकों की ओर से प्रकाशित होता है। जिस में धार्मिक, राजनीतिक, ऐतहासिक तथा अन्यान्य विषय सम्बन्धी योग्यतापूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। इस पत्र का "गुरुकुलांक" आप के सन्मुख ही है। इसी भांति यहां के शिक्षित स्नातकों ने आर्यभाषा पत्रों द्वारा आर्य जनता की सेवा में अपने को समर्पित किया है। दिल्ली से 'विजय' तथा 'अर्जुन' पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की सम्पादकता में प्रकाशित हुआ और हो रहा है। नागपुर से प्रकाशित

होने वाले साप्ताहिक पत्र 'प्रणवीर' के सम्पादकों में पं०रामगोपाल जी विद्यालंकार भी एक हैं। इसी प्रकार इस समय नागपुर से 'मारवाड़ी' पत्र पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार के सम्पादकत्व में निकल रहा है और पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने पञ्जाब में, आर्यभाषा का प्रचार न होते हुए भी, आर्यभाषा में लगन होने के कारण सब प्रकार घाटा सहन करते हुए भी उत्साह से 'साप्ताहिक सत्यवादी' का सम्पादन तथा प्रकाशन किया। इस समय भी वह पञ्जाब प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि की ओर से प्रकाशित होने वाले 'आर्य' पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। इस के अतिरिक्त अन्य भी कुछ स्नातक इस क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। समय आयगा जब वह अपने को सुयोग्य सम्पादक सिद्ध कर मातृभूमि की सेवा में अपने जीवन को सफल बनायेंगे। इसके अतिरिक्त जहाँ इस संस्था ने आर्यभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया है वहाँ शिक्षकों के कई वर्षों के अनुभवों से उच्च कक्षा के योग्य आर्यभाषा के ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक ग्रन्थ प्रकाशित किये है। 'भारतवर्ष का इतिहास' नामक पुस्तक के प्रथम भाग की तीन आवृत्तियाँ हो चुकी हैं इसका दूसरा खण्ड भी इस वर्ष प्रकाशित हुआ है। इसका लेखक मैं स्वयं हूं, इस के विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, इसे आपके विवेचन पर ही रहने देता हूं। इसके अतिरिक्त 'भौतिकी', 'रसायन' तथा 'गुणात्मक-विश्लेषण' प्रभृति वैज्ञानिक पुस्तकें भी यहाँ से प्रकाशित होचुकी हैं जो शिक्षणालयों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई हैं। यदि भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिकारी इस ओर ध्यान दें तो यह पुस्तकें आर्यभाषा के प्रचार में उत्तम सहायक हो सकती हैं। इसी संस्था के परिणाम का फल है कि साहित्य के लेखकों में यहाँ के शिक्षित स्नातकों ने उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया है। प्रत्येक ७ स्नातकों में से एक लेखक है और प्रायः सबने मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित की हैं। पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित 'नैपोलियन बोनापार्ट' 'प्रिन्स बिस्मार्क' तथा 'महावीर गैरिबाल्डी' अपनी श्रेणी के अद्वितीय ग्रन्थ हैं। पंडित

प्राणनाथ विद्यालङ्कार के इतिहास तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के नामों को दुहराने की आवश्यकता नहीं। आप उन ग्रन्थों से सुपरिचित ही हैं। इसके अतिरिक्त गुरुकुल के उपाध्याय पण्डित विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार की वेद सम्बन्धी पुस्तकों ने आर्यभाषा साहित्य को उन्नत करने में पर्याप्त हिस्सा लिया है।

सभ्यगण! इस संस्था की स्थिरता तथा वृद्धि के साथ राष्ट्र-भाषा आर्यभाषा का विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि किसी शिक्षा सम्बन्धी संस्था [Educational Institutions] ने आर्यभाषा के लिये बड़े २ विद्वानों तथा साधारण जनता में आदर वा प्रेम का भाव उत्पन्न किया है और साहित्यसेवी विद्वान् पैदा किये हैं तो उन में इस संस्था का नाम भी मुख्य होगा। अब यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि आर्यभाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है और उच्च शिक्षा का माध्यम हो सकती है। सर टी. मूर भी इस बात को अच्छी तरह समझते थे। वह लिखते हैं—Would you, then, make English knowledge a wholesome food—would you present its speedily becoming innutrive or poisonous to the people of India, give it a vernacular organ; for by such an organ only can it acquire and preserve those vital principal of accessibility, and of proneness to identification with household experiments upon which it must wholly depend, whether that knowledge shall ever be a blessing, and shall not presently be a curse, to this land. प्रत्येक देश प्रेमी ने इस बात को अच्छी तरह से अनुभव कर लिया है। यहां हम अपने मद्रास प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सभासद् महोदयों के प्रयत्न की सराहना किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने आर्यभाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान देना अपना कर्तव्य समझा है और मद्रासप्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में वहां के प्राथमिक शिक्षणालयों आर्यभाषा को माध्यम बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया है। सब राष्ट्रीय

तथा सरकारी शिक्षणालयों के सञ्चालकों से हमारा यही अनुरोध है कि वे अपने शिक्षणालयों में आर्यभाषा को ही माध्यम स्वीकार करें, आर्यभाषा में ही उच्चशिक्षा देने का प्रयत्न करें। प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य है कि वह अपने बालकों को और विशेषतः कन्याओं को आर्यभाषा में ही शिक्षा दे जिस से वह सच्चे भारतीय नागरिक हो कर राष्ट्रीयता के आधार स्तम्भ बन सकें। मुझे निश्चय है कि आप सब उपस्थित सज्जन यदि इस पुण्य कार्य की पूर्ति के लिये अपने कर्तव्य का पालन करेंगे और अपने पुत्रों को सच्चा भारतीय नागरिक बनाने के लिये आर्यभाषा ही में इन्हें शिक्षा देने का प्रबन्ध करेंगे और हर तरह से आर्यभाषा की उन्नति में सहायक ही होंगे, बाधक नहीं। इस के बाद सब विद्वानों से मेरा सानुनय निवेदन है कि वह जो मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित करें वह आर्यभाषा में ही प्रकाशित करें। किसी भाषा का उत्कृष्ट तथा सम्मानित होना उसके साहित्य पर निर्भर है। आर्यभाषा निकृष्ट है यह कह कर इससे उपेक्षा कर लना और अन्य भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करना आर्यभाषा को स्वयं निकृष्ट बनाना है। एक वार एक सज्जन ने आंग्लभाषा के कवि मिल्टन से प्रार्थना की कि आप अपने काव्य को ग्रीक या लेटिन में लिखें क्योंकि वहां उत्कृष्ट तथा भाषाएं है, आंग्लभाषा नहीं। उस समय उस दूरदर्शी कवि ने जो उत्तर दिया वह ध्यान देने योग्य है। उसने कहा मैं एक ऐसी पुस्तक लिख रहा हूं जिस से आंग्ल साहित्य समृद्ध तथा सम्मानित हो जाएगा। वस्तुतः एसा ही हुआ, मिल्टन का 'Paradise lost' आंग्लभाषा का समुज्वल रत्न है और इसके कारण आंगलभाषा का स्थान बहुत उच्च हो गया है। इस लिये यदि हमें आर्यभाषा के प्रचार की उत्कट अभिलाषा है तो उच्च कोटि के मौलिक ग्रन्थ आंग्लभाषा आदि किसी विदेशी भाषा में न लिखकर आर्यभाषा में ही लिखें। इसी तरह का आर्यभाषा का साहित्य उत्कृष्ट होगा। फ़ारसी में काव्य लिखने से इकबाल की कीर्ति में क्षति नहीं पहुँची प्रत्युत फ़ारसी

साहित्य अधिक उच्च होगया है। इसी प्रकार बंग-साहित्य का उत्कर्ष कवीन्द्र रवीन्द्र तुल्य उच्च कवियों के मौलिक ग्रन्थ बंगला-भाषा में निकलने से हुआ है। अतः प्रत्येक देश प्रेमी विद्वान् से बार २ हमारा यह नम्र निवेदन है कि वह अपने मौलिक ग्रन्थ पहले आर्यभाषा में लिखे। उस से अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाय। श्रीयुत प्रेमचन्द के उपन्यासों से आर्यभाषा साहित्य की वास्तविक उन्नति हुई है और वह उज्ज्वल हुआ है। राष्ट्रभाषा आर्यभाषा के प्रति की गई सेवा के लिये श्रीयुत् प्रेमचन्द जी का प्रयत्न सराहनीय है और प्रत्येक आर्यभाषा प्रेमी के लिये अनुकरणीय है। आशा है कि सब देश हितैषी सज्जन इस ओर विशेष ध्यान देंगे और आगे से अपने ग्रन्थ आर्यभाषा में लिख कर प्रकाशित करेंगे।

अन्त में मैं स्वागतसमिति की ओर से आप सब दूर २ देशों से आए हुए प्रतिनिधि महोदयों तथा अन्य उपस्थित सज्जनों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार किया है और आर्य भाषा के लिए प्रेम प्रदर्शित किया है। सम्भव है कि हमारी ओर से किसी भूल के कारण आप को कोई कष्ट हुआ हो या आपके आतिथ्य सत्कार में हम अपने को सुयोग्य सिद्ध न कर सके हों। आशा है कि आप इन बातों पर ध्यान न देंगे और हमारी भूल चूक के लिये क्षमा करेंगे। मुझे आप से पूर्ण आशा है कि यहाँ से वापिस जाकर आप सब आर्यभाषा प्रेमी सज्जन आर्यभाषा के प्रचार में हर प्रकार की सहायता देंगे और आर्यभाषा की इस सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था को अपना कर दिल से इसकी वृद्धि के लए शुभकामना करेंगे।

ओम् शम्